□ इन्द्रकुमार कठोतिया

जैन धर्म से अनुप्रेरित शासक : जयसिंह सिद्धराज और उसकी मुद्राएँ

महान जैन धर्म से प्रभावित होकर न जाने कितने ही भारतीय नरेशों ने या तो जैन धर्म को अंगीकार किया अथवा उसके प्रचार-प्रसार और उत्थान में अपना महनीय योगदान दिया। अनहिलपाटण अथवा अनहिलवाद या अनहिलपुरा (गुजरात) के चालूक्यवंशीय (सोलंकी) जयसिंह सिद्धराज (विक्रम संवत् ११५०-११९९ तद्नुसार ई० सन् १०९४-११४४) उन्हीं राजाओं में से एक था।

गुजरात के चालूक्यवंशीय राजाओं के लगभग साढ़े तीन सौ वर्षों के इतिहास में (९६१-१३४० ई०) जैनधर्म एवं तत्सम्बन्धी साहित्य का अविच्छिन्न एवं द्रुत गति से विकास हुआ। जैन लेखक राजघरानों एवं प्रशासन से जुड़े रहे जिसमें उनके द्वारा रचित साहित्य से हमें तत्कालीन परिस्थितियों, घटनाओं एवं राजनैतिक वातावरण का अविकल एवं अक्षरसः ज्ञान प्राप्त होता है। मूलराजा से लेकर अन्तिम राजा तक इस राजघराने की राजधानी अनहिलपताका अथवा अनहिलपुरा या अनहिलपाटण ही बनी रही।[१]

जयसिंह कर्ण एवं मायानल्लादेवी का पुत्र था। मायानल्ला चंद्रपुर के कदंब राजा जयकेशी की पुत्री थी।[२] ''प्रबंध चिंतामणि'' के अनुसार यह जयकेशी 'शुभकेशी' का पुत्र था जो कर्णाटक का राजा था। हमें यह ज्ञात है कि शुभकेशी गोवा के कदंब राजघराने का तीसरा अधिष्ठाता शष्ठदेव था। ऐसा समझा जाता है कि जयसिंह के नाना जयकेशी कोंकण के राजा थे जिसकी राजधानी आधुनिक गोवा थी। जयसिंह की माँ एक महान स्त्री थी। जयसिंह के आरम्भिक जीवन को सँवारने का पूर्ण श्रेय उन्हीं को जाता है। राजा कर्ण की मृत्यु के उपरान्त मायानल्ला देवी ने मंत्री शांतु की निगरानी में जयसिंह को शस्त्र विद्या की शिक्षा दिलवायी।[३] मायानल्ला देवी ने एक दीर्घ जीवन जीया और अपने पुत्र की उदीयमान जीवन-यात्रा को निकटता से देखा। हेमचन्द्राचार्य अपने 'देव्याश्रय काव्य' में लिखते हैं कि जयसिंह बढ़ती उम्र के साथ युद्ध-कला एवं शासन-व्यवस्था में निपुण होता गया। हाथियों तक को वश में कर लेने की कला भी वो जानने लगा था। तरुण अवस्था को प्राप्त करते ही उसका राज्याभिषेक कर दिया गया। यह औपचारिकता वि० सं० ११५० पौष मास में सम्पन्न की गई।[४] 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अनुसार उसका राज्यकाल उनचास वर्ष (वि० सं० ११५० से ११९९ तद्नुसार १०९४ से ११४३ ई०) था।[५] 'विचार श्रेणी' भी इसी तथ्य का प्रतिपादन करती है परन्तु 'आइने अकबरी' के अनुसार जयसिंह ने पचास वर्षों तक राज्य किया।[७] इस उल्लेख का अनुमोदन वि० सं० १२०० (११४४ ई०) के बाली पाषाण शिलालेख से भी होता है।[८]

'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अनुसार 'कर्ण' जयसिंह का राज्याभिषेक करके 'आशापल्लि' के विजय-अभियान के निमित्त चला गया और विजयोपरान्त वहीं पर कर्णावटी नामक नगरी बसा कर स्वयं राज्य करने लगा।[९]

जयसिंह जब राज्यारूढ़ हुआ तब अनहिलपाटण की राजनैतिक और भौगोलिक स्थिति उतनी सुदृढ़ नहीं थी। उसके पूर्वज मूलराज से लेकर भीम तक – शाकंभरी, सिंध, नाडूला, मालवा, सौराष्ट्र, लाट, कच्छ और अर्बूद मंडल के नरेशों से युद्ध करते रहे थे परन्तु अन्तिम तीन क्षेत्र ही उनके अधिपत्य में आ पाए।

जयसिंह बड़ा ही जीवट का योद्धा था। उसने जो कुछ भी अपने पूर्वजों से प्राप्त किया उसको विस्तृत करते हुए एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और गुजरात की कीर्ति को चहुँ ओर फैलाया। कई जैन सूत्रों से हमें विदीत होता है कि जयसिंह गुजरात साम्राज्य का 'सांभर' से कोंकण सीमा रेखा तक निर्विवाद राजा बन गया था। उसके साम्राज्य में आधुनिक गुजरात – लाट, सौराष्ट्र, कच्छ सहित राजस्थान के कुछ भूभाग, मालवा एवं मध्य भारत निहित थे।

जयसिंह का सर्वप्रथम महत्वपूर्ण कार्य 'मालवा विजय' के साथ आरम्भ हुआ। कहते हैं जयसिंह के आरम्भिक राज्यत्वकाल में परमार नरेश नरवर्मन ने अनहिल पाटण पर चढ़ाई कर दी थी। यह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटना तब घटित हुई बताई जाती है जब जयसिंह अपनी माता मायानल्ला देवी के संग सोमनाथ की तीर्थ यात्रा पर गया हुआ था। उसके मुख्यमंत्री शांतु को आक्रांता के साथ अपमानजनक शर्तों पर संधि करनी पड़ी। तीर्थ यात्रा से लौटने के उपरान्त जयसिंह ने इसका बदला मालवा पर जीत हासिल करके लिया। नरवर्मन के साथ हुए युद्ध का वर्णन जैन वाङ्मय में बड़े विस्तार से किया है। इनमें जयसिंह सूरि रचित 'कुमार पाल चरित', जिनमण्डलगणि रचित 'कुमारपाल प्रबन्ध' तथा राजशेखर कृत 'प्रबन्ध कोष' प्रमुख हैं। इन काव्यों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि इस युद्ध में जयसिंह ने नरवर्मन को बंदी बना लिया था। इन रचनाओं से पूर्व की एक कृति 'कीर्ति कौमुदी' से जानकारी मिलती है कि जयसिंह ने नरवर्मन की धार नगरी पर अपनी विजय प्राप्त कर ली। इन साहित्यिक रचनाओं के अतिरिक्त हमें कतिपय शिलालेखों से भी इस महत्वपूर्ण विजय की जानकारी मिलती है। 'तालवार' शिलालेख से इस विषय पर प्रकाश पड़ता है कि जयसिंह ने नरवर्मन का मानमर्दन कर दिया था। इसी प्रकार ललवाड़ा के गणपति मूर्ति लेख से पता चलता है कि जयसिंह ने नरवर्मन के घमंड को चूर-चूर कर दिया।[१०] दोहड़ स्तंभ-शिलालेख से ज्ञात होता है कि जयसिंह ने मालवा के राजा को कैद कर लिया था।[११] जैन साधु जयमंगल द्वारा रचित 'शुंध शैल-शिलालेख' से ज्ञात होता है कि इस युद्ध में नाडूल चाहमान अशराज ने जयसिंह का साथ दिया था।[१२] कुमारपाल की बड़नगर प्रशस्ति में भी इस कथानक का उल्लेख है कि किस तरह जयसिंह ने मालवा के राजा का मानमर्दन किया था।[१३]

लगता है इस मालवा-विजय के उपलक्ष में ही जयसिंह ने 'महाराजाधिराज परमेश्वर'[१४] एवं 'त्रिभुवन गण्ड'[१५] की उपाधियाँ धारण कीं।

जयसिंह का द्वितीय महत्वपूर्ण युद्ध सौराष्ट्र के साथ हुआ। आ० हेमचन्द्र ने 'सिद्ध-हेम-व्याकरण' में सौराष्ट्र विजय का वर्णन किया है।[१६] 'कीर्ति कौमुदी' के अनुसार जयसिंह ने शक्तिशाली सौराष्ट्र के 'खेंगार' को युद्ध में परास्त किया।[१७] 'विविध तीर्थ कल्प' में भी राजा का नाम 'खेंगार राय' उल्लिखित है।[१८] इसी प्रकार 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में भी इस युद्ध का उल्लेख किया गया है।[१८] 'प्रबन्ध चिन्तामणि' के अनुसार जयसिंह ने सौराष्ट्र के प्रबन्धन हेतु 'सज्जन' को अपना 'दण्डाधिपति' अथवा 'राज्यपाल' नियुक्त किया।[२०] जयसिंह के राज्यत्वकालीन वि०सं० ११९६ के दोहड शिलालेख में भी यह उल्लिखित है कि उसने सौराष्ट्र के राजा को बंदी बनाकर कारावास में बंद कर दिया था।[२१] 'प्रबंध चिन्तामणि' के सूत्रों से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि सौराष्ट्र पर विजय ई० ११२५-२६ से पूर्व कभी भी हुई होगी।

जयसिंह की एक और महत्वपूर्ण उपलब्धि अनार्य राक्षस राजा 'बरबरक' पर विजय प्राप्ति था। इस उपलब्धि के पश्चात् ही उसे 'सिद्धराजा' की उपाधि से विभूषित किया गया।[२२] इसी विजय-प्राप्ति के पश्चात् उसे 'बरबरक जिष्णु' का विरूद भी प्राप्त हुआ। उज्जैन के वि०सं० ११९६ के खण्डयुक्त पाषाण शिलालेख में इसका स्पष्ट उल्लेख हुआ है।[२३] इस युद्ध विषयक वर्णन जैन कृति 'वाग भट्टालंकार'[२४] में भी गुम्फित है। 'प्रबन्ध कोष' से हमें चन्देल 'मदनवर्मन' के साथ उसकी राजधानी 'महोबा' के लिए हुए युद्ध विषयक जानकारी प्राप्त होती है। अन्ततः जयसिंह ने छियानवे करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ प्राप्त कर युद्ध को समाप्त किया। 'कालींजर' के 'पाषाण शिलालेख' से भी उपर्युक्त घटना पर प्रकाश पड़ता है (जनरल ऑफ एसियाटिक सोसाइटी, १८४८)।

हेमचन्द्राचार्य कृत 'चडोनुशासन'[२५] तथा वागभट्ट कृत अलंकार के लेखन से उजागर होता है कि जयसिंह ने सिंधुराज को युद्ध में हराया था। 'वाग भट्टलंकार' के टीकाकार सिंह देवगणि लिखते हैं कि वह 'सिंधुदेशधीप' अर्थात् सिंध का शासक था। जयसिंह के ११४० ई० के 'दोहड़ शिलालेख' में इस युद्ध के विषय में उल्लेख किया गया है।[२६]

सपादलक्ष के 'आनक राजा' (अर्णोराजा) (११३९-११५३ ई०) का वर्णन 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में किया गया है। उसने अर्णोराजा से लाखों वसूल करके छोड़ा।[२७] सांभर से प्राप्त एक शिलालेख में भी यह उल्लिखित है कि 'आनक' जयसिंह के अधीन हो गया था।[२८]

इसी प्रकार जयसिंह के दक्षिण भारतीय अभियान के विषय में भी हमें 'जिन मंडन गिरी' कृत 'कुमारपाल-प्रबन्ध' से ज्ञात होता है।[२९] एक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ से जयसिंह के 'देवगिरी' अभियान के विषय में जानकारी मिलती है। वहाँ से जयसिंह 'पैठान' की ओर अग्रसर हो गया जहाँ के राजा ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। 'कल्याण कटक' में उस समय 'विक्रमादित्य-षष्ठ' का स्वामित्व था। इसका विरूद 'परमार्दी' था। जयसिंह के 'तालवार शिलालेख' में परमार्दी के हार जाने का उल्लेख किया गया है।[३०] 'कोल्हापुर प्रबंध चिन्तामणि' के सर्गों से हमें जयसिंह का उस क्षेत्र में अधिकार होने का पता चलता है।[३१]

इस तरह उपर्युक्त लगभग दस युद्धों में विजय प्राप्त कर जयसिंह एक मान्यताप्राप्त योद्धा बन गया था और अपने बाहुबल से वह निर्विवादित रूप से सांभर से कोंकण तक का एकाधिपति बन चुका था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्तलिखित जैन ग्रन्थों एवं तत्कालीन प्रस्तर शिलालेखों से हमें ज्ञात होता है कि जयसिंह ने अपने साम्राज्य पर ज्यो-ज्यों पकड़ मजबूत की उसे क्रमशः उन्नत उपाधियाँ प्रदत्त की गईं। जयसिंह के राज्यारोहण के सात वर्षों पश्चात् वि०सं० ११५७ (११००ई०) में रचित 'निशिथ चूर्णि' में जयसिंह को केवल मात्र 'श्री जयसिंह देवराज्ये' अर्थात् 'जयसिंह के राज्य काल में' से सम्बोधित किया गया है।[३२] राजा को विरुद रहित सम्बोधन से उद्धृत किया जाना उसके अप्रभाव का परिचायक है। ऐसा आभासित होता है कि जयसिंह उस काल में केवल मात्र सिंहासन का ही अधिकारी बन सका होगा। इसके तीन वर्षोपरान्त रचयित वि०सं० ११६० (११०४ ई०) की जैन हस्तलिखित कृति 'आदिनाथ चरित' से प्रकाश पड़ता है कि जयसिंह का राज्य-विस्तार 'केमबे' तक हो गया था।[३३] चार वर्षों पश्चात् हमें सं० ११६४ (११०८ ई०) में रचित एक हस्तलिखित जैन ग्रंथ प्राप्य है। इसमें जयसिंह को 'समस्त राजाबलि-विराजिता-महाराजाधिराज-परमेश्वर श्री जयसिंह देव कल्याणे-विजयराज्ये' से सम्बोधित किया गया है।[३४] ऐसा लगता है कि उस समय तक जयसिंह ने सर्वत्र अपने पराक्रम का लोहा मनवा लिया होगा। इसके पश्चात् वि०सं० ११६६ (ई० १११०) में रचित 'आवश्यक सूत्र ग्रंथ' से जयसिंह के एक और विरूद का– 'त्रिभुवन गंड' भान होता है।[३५] 'त्रिभुवन गंड' अर्थात् तीनों लोकों का अभिभावक। ऐसा प्रतीत होता है कि जयसिंह का सैन्य अभियान उस समय में अपनी पराकाष्ठा पर था। और उसका वर्चस्व चहुँ दिशाओं में पैठ गया होगा। फाल्गुन वि०सं० ११७९ में विरचित 'पंचवास्तुका ग्रंथ' में उसी विरुदावली को उद्धृत किया गया है किन्तु साथ में 'श्रीमत्' और जोड़ दिया गया।[३६] उस समय तक 'सांतुका' जयसिंह का 'महाकाव्य' अर्थात् मुख्यमंत्री था। भाद्रपद मास वि०सं० ११७९ में रचित जैनग्रंथ 'उत्तराध्ययन सूत्र' से विदित होता है कि उस समयम में मुख्यमंत्री 'आशुका' हो चुका था तथा राजा को अतिरिक्त विरुदावली 'सिद्ध चक्रवर्ती' भी प्रदत्त की गई।[३७] वि०सं० ११९२ में लिखित 'नवपदलघुवृत्ति' एवं 'गाला शिलालेख' में जयसिंह को 'अवन्तिनाथ' के विरूद से भी नवाजा गया है।

किन्तु बड़े ही आश्चर्य का विषय है कि जयसिंह की ज्ञात मुद्राओं में उपर्युक्त एक भी विरूद का प्रयोग नहीं किया गया। संलग्न निखात में मैंने प्राप्य १७ सिक्कों के लेख को दर्शाया है। इन सिक्कों के उर्ध्व भाग में एक दक्षिणाभिमुख हस्ति का अंकन हुआ है और वाम भाग में तीन पंक्तियों में निम्न आलेख उकेरित किया गया है :

''श्रीमज –
जयसिंह
प्रिय''

स्वर्गीय मुद्राशास्त्री डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त के अनुसार सिक्कों पर प्रयुक्त 'प्रिय' शब्द बड़ा ही अटपटा-सा लगता है। डॉ० गुप्त के अनुसार इस शब्द का प्रयोग 'वीसलदेव प्रिय द्रम्म' के रूप में प्रायः अभिलेखों में देखा जाता है। कदाचित् इसका अभिप्राय आत्मीयता प्रकट करना है।[३९] डॉ० गुप्त ने इन सिक्कों का तारतम्य प्रतिहार राजा वत्सराज जिसने रणहस्ति विरुद धारण किया था। उनके भी चित भाग पर दक्षिणाभिमुख हाथी और पट भाग पर 'रण-हस्ति' आलेख है। परन्तु मेरी धारणा है कि जयसिंह के सिक्कों की तुलना वत्सराज से करना समीचीन नहीं होगा। कारण चालुक्य वंशीय जयसिंह 'प्रतिहार वत्सराज' के आठवीं शताब्दी (ई० ७७८-७८८) के सिक्कों की भाँति सिक्के ५०० वर्षों उपरान्त क्यों प्रचलित करता? द्वितीयतः प्रतिहार वत्सराज के सिक्के ६-७ ग्रेन के नन्हें आकार के सिक्के हैं जबकि जयसिंह द्वारा मुद्रित सिक्कों का वजन २० ग्रेन है। डॉ० गुप्त के अतिरिक्त न तो किसी मुद्राविज्ञ ने जयसिंह सिद्धराज के सिक्कों को उद्धृत ही किया, नहीं प्रदर्शित किया।

परन्तु जैन वांङ्मय में हमें इस तथ्य की कुछ व्याख्या मिलती है कि क्यों जयसिंह ने एक ओर हस्ति तथा दूसरी ओर 'जयसिंह प्रिय' का उपयोग किया है। हमें विदित है कि राजा भोज की मृत्यु के उपरान्त 'परमार' और चालुक्य राजघरानों के मध्य रुष्ठता बढ़ती ही गई। 'भोज' के अनुवर्ती राजाओं नरवर्मन तथा उसके पुत्र यशोवर्म्मन कभी भी उज्जैनी की भव्यता एवं कीर्ति को प्रतिष्ठापित नहीं कर सके। किन्तु उन्होंने चालुक्य राजा जयसिंह के साथ अपनी लड़ाई जारी रखी। यशोवर्म्मन एक बेहद ही कमजोर शासक था। वह सन् ११३३ ई० से पूर्व मालवा के राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ। उसके शासन काल में भी जयसिंह के साथ कोई समझौता नहीं हो सका। फलस्वरूप जयसिंह ने बड़ी तैयारी के साथ मालवा पर हमला कर दिया। हेमचन्द्र के अनुसार यह युद्ध बारह वर्षों तक लम्बा चला। वे लिखते हैं– ''जयसिंह मालवा की ओर बड़ी ही धीमी गति से चला। रास्ते में जितने भी छोटे-बड़े राज्य मिले उन्हें धराशायी करता गया। 'भीलों' ने भी उसे अपनी सेवायें प्रस्तुत की। अन्त में उसने अपनी सेना को क्षिप्रा नदी के तट पर तैनात करते हुए धार-नगरी पर हमला किया। भयभीत यशोवर्म्मन मुँह छुपाए धार के किले में पड़ा रहा। उसने किले के समस्त दरवाजों को बंद करवाते हुए उन्हें तीखे तुणिरों से आच्छादित कर दिया। जयसिंह ने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'यश:पत:' नामक एक हाथी के सहयोग से सभी दरवाजों को ध्वस्त कर दिया। यशोवर्म्मन धार नगरी से पलायन कर गया...।[४०] मेरुतुंग ने धार विजय की इस घटना का वर्णन कुछ इस प्रकार से किया है– ''राजा जयसिंह ने मालवा राज्य को विजित करने का अभियान प्रारम्भ किया। यह लड़ाई १२ वर्षों तक जारी रही। परन्तु जयसिंह धार के मजबूत किले पर अपना कब्जा नहीं जमा सका। जयसिंह वहाँ से लौट जाना चाहता था कि तभी मंत्री मुंजल ने किले को विध्वंस करने की एक योजना बनाई। राजा को इस तरकीब के बारे में सूचित किया गया। उसने अपनी सेना को दक्षिण दरवाजे की ओर लगाया तथा महंत शामला द्वारा निर्देशित एक विशालकाय हाथी 'यश: पतल' की मदद से लोहे की मजबूत काँटेदार छड़ों से निर्मित दरवाजे को तोड़ने में सफलता प्राप्त की। तदुपरान्त सभी दरवाजों को खोल दिया गया। किन्तु इस प्रयास में उक्त हाथी घटनास्थल पर ही वीरगति को प्राप्त कर गया। इस घटना से द्रवित होकर उस हाथी की स्मृति में राजाज्ञा से गणपति के एक भव्य मंदिर का निर्माण ग्राम वाडसर में करवाया गया। जयसिंह ने यशोवर्म्मन को बंदी बनाया, धार में अपना प्रभुत्व कायम किया और अंत में पाटण की ओर लौट गया....''[४१] उपर्युक्त वर्णन से हम इस संभावना को नहीं नकार सकते कि जयसिंह के सिक्कों में इसी हाथी को दर्शाया गया था जो राजा को अत्यधिक प्रिय था। इस सम्भावना को इस तथ्य से और भी बल मिलता है कि ये सिक्के मालवा क्षेत्र तथा विशेषकर धार अंचल में बहुलता से पाए जाते हैं। तत्कालीन समय के अन्य सिक्कों के बारे में हमें जैन ग्रन्थों से जानकारी तो मिलती है परन्तु जयसिंह के अन्य सिक्के अभी तक प्रकाश में नहीं आए हैं। हेमचन्द्र ने अपने ग्रंथ 'देव्याश्रय काव्य' में कतिपय सिक्कों का उल्लेख किया है। छोटे सिक्कों में उन्होंने 'सुरपा' नामक सिक्के का उल्लेख किया है।[४२] उनके अनुसार एक पुष्पहार की कीमत दो सुरपा के बराबर थी। उन्होंने 'प्रस्थ' और 'भंगिका' नामक दो अन्य सिक्कों का भी उल्लेख किया है। 'भंगिका' अनुपान में आधे रुपये के बराबर था।[४३] महंगी स्वर्ण मुद्राओं के विषय में भी जैन ग्रंथों ने प्रकाश डाला है। एक स्वर्ण मुद्रा तो २० अथवा ४० रुपये के बराबर थी। लगता है वह मात्रा में अत्यधिक वजन की होगी। अन्य स्वर्ण मुद्राओं में 'निस्क', 'विस्ट' और 'पाल' का नाम प्रमुख है।

प्रत्येक सेना का भी अपना मांगलिक चिह्न युक्त ध्वज होता था। जयसिंह सिद्धराज के ध्वज में 'ताम्रचूड़ा' नामक सिक्कों में कहीं नहीं मुद्रित किया गया।

यद्यपि जयसिंह का पारिवारिक धर्म शैव था किन्तु उसका अन्य धर्मों के प्रति भी समान रुझान था। जैन धर्म से तो वह अत्यधिक ही प्रभावित था। 'प्रबंध चिंतामणि' के अनुसार उसने सभी दर्शनों की शाखाओं को मान्यता प्रदान कर सम्मानित किया था। 'सर्वधर्म समभाव' में उसका अटूट विश्वास था। जहाँ उसने 'सोमनाथ' की तीर्थ यात्रा की थी वहीं जैन के दो धार्मिक स्थलों 'रेवतक' तथा 'शत्रुञ्जय' की तीर्थ यात्राएँ भी सम्पन्न की थी। 'देव्याश्रय काव्य' के पंद्रहवें खंड से विदित होता है कि जयसिंह सिद्धराज ने सरस्वती नदी के किनारे सिद्धपुरा में अन्तिम अर्हत का मंदिर बनवाया था।[४५] वहाँ से वह सोमनाथ की पैदल यात्रा पर निकला। सोमनाथ से जयसिंह 'रेवतक' पहाड़ पर गया तथा बाइसवें तीर्थंकर 'नेमिनाथ' की आदर सहित पूजा की।[४६] तत्पश्चात् वह 'शत्रुञ्जय' गया तथा वहाँ पर उसने 'नभेय' प्रथम तीर्थंकर की पूजा अर्चना की।[४७] शत्रुंजय के पास उसने 'सिंहपुर' (अर्वाचीन-सिहोर) नामक एक नगरी बसाई तथा अन्य गाँवों सहित इसे भी दान में दे दिया।[४८] वि.सं. ११९१ के एक जैन ग्रंथ के अनुसार, जैन धर्म से प्रभावित होकर उसने एकादशी वगैरह कतिपय दिवसों पर जीवहत्या को बंद करा दिया था।[४९]

जयसिंह द्वारा सौराष्ट्र के प्रबंधन हेतु 'सज्जन' को महामण्डलेश्वर अथवा राज्यपाल नियुक्त किया गया था। यह सज्जन जैन धर्म का परम भक्त था। 'विविध तीर्थ कल्प' के अनुसार सज्जन ने वि०सं० ११८५ (ई० ११२९) में गिरनार के पहाड़ पर 'नेमिनाथ भगवान' का एक मंदिर बनवाया था।[५०] 'रेवत गिरीरासो' भी इस तथ्य की पुष्टि करता है।[५१] 'प्रभावक चरित' से ज्ञात होता है कि सौराष्ट्र नौ वर्षों तक सज्जन के अधीन रहा।[५२] प्रबन्ध चिन्तामणि के मतानुसार सज्जन ने तीन वर्षों की राजकीय आय को इस मन्दिर के निर्माण में व्यय किया था।[५३] बाद में यही सज्जन 'कुमारपाल' के समय में भी 'दण्डनायक' नियुक्त किए गए। इसका प्रमाण हमें दिगम्बर लेखक रामकीर्ति द्वारा सीतोगढ़ में लिखित काव्य से मिलता है।[५४]

एक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ के अनुसार वि०सं० ११७९ (ई० ११२३) में 'आशुका' को अपना मुख्यमंत्री बनाया था। वह जैनधर्म का अनुयायी था। जयसिंह ने उन्हीं के परामर्श से शत्रुञ्जय की तीर्थ यात्रा सम्पन्न की थी।[५५] 'प्रभावक चरित' और 'मुद्रिता कुमुद चंद्र' के अनुसार आशुका दिगम्बर मुनि कुमुदचन्द्र और देवसूरि के शास्त्रार्थ में भी उपस्थित रहे थे।[५६]

वि०सं० ११९१ (ई० ११३५) के एक ग्रंथ से जानकारी मिलती है कि महात्मा गांगला जयसिंह के राज्य में राजकीय कार्यों के कर्ता थे। ये भी जैनधर्म के अनुयायी थे तथा कुमुदचंद्र और देवसूरि के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ उसमें वे भी उपस्थित थे।[५७] यह शास्त्रार्थ वि०सं० १०८१ में हुआ था और उस समय गांगाल न्याय्यता अभिलेखन के प्रभारी थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धराज जयसिंह ने पाटण को ज्ञान का मंदिर बना दिया था। जैन साधुओं ने जिस धार्मिक उत्साह से अपने हस्तलिखित साहित्य को प्रणीत एवं संग्रहीत किया वह अनहिलपट्टन की बौद्धिक त्वरितता की छवि को और भी अधिक उजागर करती है। हेमचन्द्राचार्य ने भी पाटण के धार्मिक और शैक्षणिक जीवन के बारे में अपनी कृतियों में प्रकाश डाला है। जैनधर्म के चैत्र गच्छीय महान संत हेमचन्द्र का बहुत ही गहरा असर जयसिंह सिद्धराज पर था। सर्वप्रथम वे राजपुरोहित बनाए गए। तत्पश्चात् उन्हें राजकीय इतिहासकार बनाया गया। वे जयसिंह के नैतिक एवं धार्मिक मार्गदर्शक भी थे। तत्कालीन समय के राजकीय इतिहास लेखक होने के नाते हेमचन्द्र ने जयसिंह के समृद्धशाली राज्य के विषय में अपने 'देव्याश्रय' काव्य में विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की है। इस साहित्यिक प्रबन्ध में जयसिंह और हेमचन्द्राचार्य के आपसी मैत्री सम्बन्धों के बारे में भी बहुत सारे उपाख्यानों को उद्धृत किया गया है। उन्होंने राजा जयसिंह के कहने पर बहुत सारे ग्रंथों का सृजन किया जिसमें 'सिद्ध हेम व्याकरण', 'कुमार पाल चरित', प्राकृत 'देव्याश्रय महा काव्य', 'लघवरहन नीति शास्त्र', प्राकृत 'वृहद् अर्हन नीति शास्त्र', 'चंगेनुशासन' आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार 'वागभट्टलंकार' के जैन साहित्यकार 'वागभट्ट' भी राजा के विशेष कृपापात्र थे। इस ग्रंथ के टीकाकार वागभट्ट को सोम का पुत्र बतलाते हैं। 'प्रभावक चरित' के अनुसार उन्होंने एक जैन मन्दिर भी वि०सं० ११७८ में बनवाया था।[५८]

जयमंगलाचार्य जो 'कवि शिक्षा' के रचयिता थे तथा वर्धमान सूरि जिन्होंने व्याकरण पर 'गण रतन महोदधि' नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया था ऐसे जैन साहित्यकार हुए हैं जो जयसिंह के राज्यकाल में फलवित हुए।

जैनधर्म के सम्पर्क एवं प्रभाव से जयसिंह के हृदय में करुणा का सागर आलोड़ित होने लगा था और यही कारण रहा कि उसने युद्ध में भी प्रतिपक्षिय राजाओं को आक्रान्त करने के पश्चात् भी रिहा ही नहीं किया वरन् अपनी पुत्रियों के संग विवाह भी करवाया। अजमेर के राजा अर्णोराज इसका ज्वलन्त उदाहरण है। युद्ध में हराकर भी उसने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ करवा दिया।[५९] पृथ्वीराज विजय के अनुसार उसकी पुत्री का नाम कंचनदेवी था। इसी प्रकार 'प्रबंध चिन्तामणि' से हमें जानकारी मिलती है कि उसने युद्ध में पराजित किए हुए सपादलक्ष के आनाका राजा को न केवल सपादलक्ष ही लौटा दिया अपितु लाखों रुपये भी साथ में दिए।[६०]

वि०सं० ११९९ में किराडू के परमार राजा सोमेस्वर की सहायता कर जयसिंह ने उसे अपना खोया राज्य पुनः दिलवाया।

उसने 'बहूलोड़ा' नामक एक कर' भी अपनी प्रजा की भलाई के लिए हटा दिया। इससे राज्य को ७२ लाख रुपये का राजस्व प्राप्त होता था। जयसिंह अपनी प्रजा की पुकार को हमेशा सुनता था जो उसकी अच्छी शासन व्यवस्था का परिचायक है। नगर रक्षा के लिए उसने कोतवाल अथवा नगर संरक्षक का पद बनाया था। अनहिल पुरा के तत्कालीन कोतवाल जैन अनुयायी जयदेव थे। इसी प्रकार 'वाग् भट्टलंकार' के रचियता जैन वाग् भट्ट भी जयसिंह के राज्य मंत्री थे।[६१]

जयसिंह सिद्धराज अपने जीवन के उत्तरार्द्ध काल में जैनधर्म से इतना प्रभावित हो गया था कि उसने अपने अन्तिम समय में जैन विधि से समाधि पूर्वक अनशन की अवस्था में पाण्डित्यपूर्ण मृत्यु को वरण किया। श्रीचंद्रसूरि कृत प्राकृत जैन रचना 'मुनि सुव्रत स्वामी चरित'के प्रत्यक्षदर्शी वर्णन के अनुसार भी जयसिंह ने संथारा करके उपवास में मृत्यु का वरण किया।[६२]

सन्दर्भ

१. देव्याश्रयकाव्य, खण्डकाव्य प्रथम, गाथा ४ : पुरं श्रिया सदाश्लिष्टं नाम्नाणहिलपाटकम् ।
२. वही, खण्ड काव्य, नवम, गाथा ९९-१०० और १५३
३. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, पृष्ठ ३५
''अष्ट वार्षिक एव स सान्त्मंत्रिणा गुण श्रेणि नीतः।''
४. वही, प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ५५
''सं० ११५० वर्षे पौष वदि ३ रानौ श्रवणनक्षत्रे वृषलग्ने श्री सिद्धराजस्य पट्टाभिषेकः''
५. वही, पृष्ठ ७६
''सं० ११५० पूर्वश्रीसिद्धराज जयसिंहदेवेन वर्ष ४९ राज्यं कृतम्।''
६. 'जैन साहित्य संशोधक,' खंड द्वय, सर्ग ४, पृष्ठ ९
७, आइने अकबरी, ब्लोचमेन एवं जनारेट द्वारा अनुवादित, भाग-२, पृष्ठ २६०
८. 'एपिग्राफिया इंडिका', खण्ड ११, पृष्ठ ३२-३३
९. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ५५
''स्वयं तु आशापल्ली नवासिनमाशाभिधानं भिल्लम भिषेणयन्... कर्णावलीपुरं निवेश्य स्वयं तत्र राज्य चकार...''
१०. 'डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नॉरदर्न इंडिया,' भाग २, लेखक एच०सी० राय, कलकत्ता, पृष्ठ ९६६ ● ११. वही
१२. 'एपिग्राफिया इंडिका' खण्ड ९, पृष्ठ ७६-७७, सर्ग २६
''श्री आशाराजनामा समजनि वसुधानायकस्तम्य बन्धुः ।
साहाय्यं मालवानां भुवि यदसि कृतं वीक्ष्यसिद्धाधिराजः ।।''
१३. 'एपिग्राफिया इंडिका', खण्ड १, पृष्ठ २९३, उद्धरण ५ (२)
१४. सिंधी जैन ग्रन्थमाला, जैन पुस्तक प्रशस्ति–'संग्रह' पृष्ठ १०१
१५. वही, पृष्ठ ६५
१६. 'पुरातत्व (गुजराती)', खण्ड ४, पृष्ठ ६७
''अजयत् सिद्धासौराष्ट्रन...''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. खण्ड काव्य – द्वितीय, गाथा २५
१८. सिंधी जैन ग्रन्थमाला, विविध तीर्थ-कल्प, पृष्ठ ९
१९. सिंधी जैन ग्रंथमाला, पुरातन प्रबंध संभ्रट पृष्ठ ३४-३५
२०. वही – विविध-तीर्थ-कल्प, पृष्ठ ९
'पुव्विगुर्जर धाराए जयसिंहदेवेण खंगाररायं हणित्ता सज्जणो दण्डाहिवो ठाविओ।'
२१. 'इण्डियन एंटीक्वेरी', भाग १०, पृष्ठ १५८-६०
''श्री जयसिंहदेवोऽस्ति भूपो गुर्जरमण्डले।
येन कारागृहे क्षिप्तौ सुराष्ट्रमालवेश्वरौ ।।''
२२. 'सिद्धो बर्बरकश्चास्य सिद्धराजस्ततोऽभवत्।' जिन मंडन रचित 'कुमारपाल प्रबन्ध' से।
२३. 'आक्रियोलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया–एनुअल रिपोर्ट', १९२१, पृष्ठ ५४-५५
२४. अध्याय ४, गाथा १२५ ''येन नक्तंचरः सोऽपि युद्धे बर्बर को जितः ।''
२५. अध्याय ४, गाथा १२९
२६. 'इण्डियन एण्टीक्वेरी,' भाग १०, पृष्ठ १५८, तल २
''अन्येऽप्युत्सादिता येन सिन्धुराजादयो नृपाः ।''
२७. सिंधी जैन ग्रन्थमाला – प्रबन्ध चिन्तामणि – पृष्ठ ४७६
२८. 'इण्डियन एन्टीक्वेरी', १९२९, पृष्ठ २३४-२३६
२९. 'कुमारपाल प्रबन्ध,' पृष्ठ ७
३०. 'राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट', १९१५, पृष्ठ-२
३१. 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला' – प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ-७३
३२. वही, 'जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह,' पृष्ठ-९९
''मंगलं महाश्रीः । सं० ११५७ आषाढ़ वदि षष्ट्या शुक्र दिने श्री जयसिंहदेवविजयराज्ये श्री भृगुकच्छनिवासिना जिनचरणाराधन-तत्परेण.....निशीथचूर्णिपुस्तकं लिखितम् ।''
३३. 'केटलॉग ऑफ द मेनूस्क्रिप्ट फ्रॉम जैसलमेर', पृष्ठ-४५, पाद संदर्भ-३
'विक्कमनिवकालाउ सएसु एक्कारसेषु सट्ठेषु। सिरि जयसिंहनरिन्दे रज्जं परिपालयं तम्मि....
३४. 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला – जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह'–पृष्ठ१००
३५. वही – पृष्ठ १००
''११६६ पोष वदि २ मंगलदिने महाराजाधिराजत्रैलोक्यगंड श्री जयसिंहदेव विजयराज्ये.....''
३६. 'वही' – पृष्ठ ६५, सं० ११७९ फागुण वदि १२ खौ समस्तराजावलि महाराजधिराज श्रीमत् त्रिभुवनगण्ड श्री जयसिंघदेवकल्याणविजयराज्ये.....सन्तुकप्रतिपत्तौ ।
३७. 'वही', पृष्ठ १०१ : सं० ११७९ भाद्रपद वार्द..अघेह श्रीमदण-हिलापाटकाभिधान, राजधान्यां समस्तनिजराजावलीसमलंकृत महाराजधिराज-परमेश्वर-त्रिभुवनगंड श्री सिद्धचक्रवर्ति श्रीमज्ज-जयसिंहदेव कल्याण विजयराज्ये श्री श्रीकरणे महामात्य श्री आशुकः सकलव्यापारान करोति ।
३८. 'भारत के पूर्व कालिक सिक्के' – डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृष्ठ २९६ ● ३९. 'वही' – पृष्ठ २९६
४०. 'देव्याश्रय काव्य' सर्ग १४
४१. ''सिंधी जैन ग्रंथमाला; प्रबन्ध चिन्तामणि'', पृष्ठ ५८-५९ :
'नृपतिः प्रयाणाम करोत्। तत्र जयकारपूर्वकं द्वादशवार्षिके विग्रहे संजायमाने सति कथंचित् धारादुर्ग भंगं कर्तुमप्रभूष्णुः अत्र मया धारा भंगान्तरं भोक्तव्य मितिकृत प्रतिज्ञो दिनान्तेऽपि कर्तुमक्षमतया सचिवैः काणिक्यां धारायां भज्यमानायां पत्रिभिः परमार पुत्रे विपद्यमाने-इत्थं प्रपञ्चात नृपः प्रतिज्ञामापूर्य अकृतकृत्यया पश्चाद्व्याधुटितुमिच्छुर्मुज्ञाल सचिवं ज्ञापयामास... दुर्गं विमृश्य यशः पटहनाम्नि बलवति दन्तावले समभिरूढ़ः... सगजः पृथिव्यां पपात । सगजः सुभटतया तदा विपद्य बहुसरग्रामे.....यशोधवलनामा विनायकरूपेणावततार,.....
४२. 'देव्याश्रय काव्य' – खंडा १७, गाथा ४८
४३. 'वही' – खंड ५, गाथा ९४ और १००
४४. 'वही' – खंड ४, गाथा ४५, खंड १७, गाथा ८३-८४
४५. 'वही' – गाथा १६-१७ ● ४६. 'वही' – गाथा ६१-८८
४७. 'वही' – गाथा ८९-९५, ४८. 'वही' – गाथा ९७-९८
४९. 'विजयसिंह रचित धर्मोपदेशमाला' :
''यस्योपदेशादखिला च देशे सिद्धाधिपः श्री जयसिंहदेवः । एकादशी मुख्यदिनेश्च मारिमकारयच्छा सन दान पूर्वाम् ।''
५०. 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला – विविध तीर्थ कल्प', पृष्ठ ९
५१. 'रेवन्तगिरी-रासु, काडवका', सर्ग १, गाथा ९
''इक्कारसह सहीउ पंचासीयवच्छरि नेमि भयणु उद्धरिउ साजणि नरसेहरि ।''
५२. 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला – प्रभावक चरित', पृष्ठ १९५, गाथा ३३३
''अद्य प्राग्नवमे वर्षे स्वामिनाधिकृतः कृतः ।
आरुरोह गिरि जीर्णमद्राक्षं च जिनालयम् ।।''
५३. 'वही'– प्रबन्ध चिन्तामणि, पृष्ठ ६४ :
''तेन स्वामिनमविज्ञाप्यैव बर्षत्रयोद्राहितेन श्रीमदुर्ज्जयन्ते श्रीनेमीश्वरस्य काष्टमयं प्रासादमपनीय नूतन : शैलमयः प्रासादः कारितः।''
५४. 'एपिग्राफिया इंडिका', भाग २, पृष्ठ ४२२
५५. 'जैन साहित्यनो इतिहास', पृष्ठ २४७
५६. 'सींघी जैन ग्रन्थमाला – प्रभावक चरित,' देवसूरि, पृष्ठ १८१, गाथा २७० ● ५७. 'वही', देवसूरि, गाथा १७२
५८. 'वही', पृष्ठ १७३, गाथा ६७-७३ 'बड़ी देवसूरि चरितम्' के अन्तर्गत ● ५९. खण्डकाव्य २, गाथा २७-२९, पृष्ठ २
६०. 'सिंधी जैन ग्रन्थमाला – प्रबन्ध चिन्तामणि', पृष्ठ ७६
''सपादलक्षः सह भूरिलक्षैरानाक भूपाय नताय दत्तः ।''
६१. 'काव्यमाला' भाग ४८, पृष्ठ १४८
६२. 'गायकवाड्स ओरियण्टल सीरीज', ७६, हस्तलिखित ग्रंथ, पाटण, पृष्ठ ३१४-३२२
''अह सग्गचालीस दिणाइं पालिऊणं समाहिणाणसणं ।
धम्मझाणपरायणचिन्तो जो परभवं पत्तो ।। ''

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय सिंह सिद्धराज की प्राप्य ताम, रजन एवं स्वर्ण सिक्कों की निखात

१.	श्री जय सिं ह प्रि (य)
२.	X (ज) य सि (ह) प्रिय
३.	(श्री) मद X सिंह (प्रिय)
४.	श्री म (द्) (ज) य सिंह प्रिय
५.	श्रीमद (ज) य सिंह X X
६.	श्री म (द) जय सिं X X
७.	(श्री मद ज) य सिंह प्रिय
८.	श्री म (द) जय सिं (ह) प्रिय
९.	X X जय सिं (ह) प्रिय
१०.	श्री म (द) (ज) य सिंह प्रिय
११.	श्री मद (ज) य सि (ह) प्रिय
११.	X X (ज) य सि (ह) प्रिय
१२	X X (ज) य सिं ह प्रिय
१३.	श्री म (द) जय सि (ह) प्रिय
१४.	श्री म (द) जय सि (ह) प्रिय
१५.	श्री म (द) जय सि (ह) प्रिय
१६.	श्री मद (ज) य सिंह X X
१७.	श्री म (द) जय सि ( ) X X X

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org